ज़िन्दगी का सिस्टम

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़मा सैय्यिदुल उलमा सै0 अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
सम्पादन : नूरे हिदायत फाउण्डेशन

क़िस्त 10

पानी की क़िस्में

पानी भी एक ऐसी चीज़ है जिस पर अक्सर हालात में नजासत का असर नहीं पड़ता । नीचे दी जा रही बातों पर ग़ौर करें :-

1. (बारिश) बरखा का पानी : यानि बादल से बरसता हुआ पानी।

2. बहता पानी : यानि वह पानी जिसका कोई ख़ज़ाना (सोता) हो और वह उससे सोतों आदि की तरह बराबर उबलता और बहता रहता हो, - समन्दर, दरिया, सोते, कुएँ, पहाड़ों से निकलने वाले झरने और जो भी इस तरह की चीज़ें हों वो सब इसमें आते हैं।

3. बहुतात का पानी : यानी वह पानी जिसका कोई ख़ज़ाना तो न हो मगर कम से कम एक '' कुर '' के इतना हो। कुर इतना पानी है जो एक ऐसे बर्तन को भर दे जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और गहराई तीन तीन बालिश्त हो । और कुल मिलाकर (आयतन Volume) सत्ताइस (27) घन बालिश्त होती हो।

अनुवादक का नोट :- आयतुल्लाह सीस्तानी के नज़दीक - हर एक साढ़े तीन बालिश्त हो, और कुल मिलाकर 42.87 बालिश्त होना ज़रूरी है । लेकिन ज़ाहिर ये है कि अगर 36 बालिश्त भी हो तो काफ़ी है ।

इन तीनों क़िस्मों का हुक्म ये है कि इन पर नजासत का असर नहीं पड़ता यानी किसी नजासत के मिलने से इनमें नजासत नहीं पैदा हाती, जब तक उस नजासत की वजह से इनका रंग या बू या मज़ा न बदल जाए । अगर नजासत की वजह से इनका रंग या बू या मज़ा कोई एक भी बदल जाए, तो नजिस हो जाएगा ।

ग़ौर कीजिए तो दुनिया में हर जिस्म की गन्दगी और नजासत को दूर करने का ज़रिया पानी है । अब अगर पानी खुद ही नजासत की वजह से नजिस हो जाया करता तो फिर नजासतों के दूर करने का ज़रिया ही क्या होता । हां अगर नजासत इस हद तक हुई कि पानी की ख़ासियत ही को बदल दे यानी वही बात कि इसके रंग या बू या मज़े को बदल दे तो इसका मतलब यह है कि पानी की मुक़ाबले (प्रतिरक्षा) की सकत नजासत के आगे हार गई यानी पानी नजिस हो जाएगा ।

अब अगर बहता पानी (दरिया, सोत वग़ैरह का पानी) या बरखा (बारिश का पानी) है और इसका सिलसिला जारी है तो चूँकि इसे बराबर मदद पँहुच रही है तो जैसे ही इसकी प्रतिरक्षा की सकत वापस आ जाए यानी नजासत का मैदा किया बदलाव दूर हो जाए, तो फ़ौरन वह पानी भी पाक हो जाएगा । लेकिन अगर ठहरा हुआ पानी है यानी उसको खुद कहीं से मदद नहीं पहुँच रही है तो ज़रूरत है कि आप उसको मदद पहुँचाइए यानी नजासत दूर करने के साथ उसमें एक 'कुर' पाक पानी डालिए, तब वह पाक हो जाएगा।

मुज़ाफ पानी (मेल मिलावट वाला पानी कहने को पानी)

अभी तक उस पानी का बयान हो रहा था, जो असल में खरा '' पानी '' कहा जा सकता है । लेकिन कुछ ऐसी बहनें वाली चीज़ें द्रव हैं जिन्हें अक्सर पानी कह तो दिया जाता है मगर देखा जाए तो उन्हें 'पानी' कहना सही नहीं है जैसे - ख़ास चीज़ों का रस, निचोड़ा हुआ अर्क़, (गुलाब, केवड़े आदि का पानी, तरबूज़ का पानी या शोरबा वग़ैरह इनको ''मुज़ाफ पानी'' कहते हैं, ये चाहे कितना ही ज़्यादा हों नजासत के मिलने से फ़ौरन नजिस हो जाएंगे।

बेशक अगर इस तरह की भी कोई बहने वाली चीज़ बहते पानी की तरह हो, यानी ज़मीन में उसका कुदरती ख़ज़ाना हो और वह खुद ब खुद उबलती हो जैसे तेल के चश्में जो कुदरत की तरफ़ से ज़मीन के

हवाले किये गये हैं । इनके बारे में फ़िकह (धर्म शास्त्र की) किताबों में कोई बयान मेरी नज़र से नहीं गुज़रा ।

शरीयत के हुक्म में अपने जी से कोई फ़तवा नहीं दिया जा सकता । दिल ये कहता है कि इस तरह की चीज़ें पाक करने वाली चीज़ों में तो नहीं होंगी क्योकि पाक करने का ज़रिया सिर्फ़ पानी है और ये पानी के असली मानी से अलग हैं, लेकिन नजासत के मिलने से ये नजिस भी नहीं होंगी क्योंकि इनका अपने सोते (उबलने, निकलने की जगह) से जुड़ा रहना और लगातार जारी रहना इनकी इतनी हिफ़ाजत तो ज़रूर करेगा। फिर भी जब तक कोई शरीयत वाली दलील सामने न हो इसके बारे में कोई फैसला नहीं किया जा सकता है।

पाक होने का वक़्त

ऊपर बयान की गयी नजासतों के बारे में शरीयत की तरफ़ से ये मनाही तो हो ही नहीं सकती थी कि तुम्हारा जिस्म या कुछ ऐसी चीज़ों की वजह से गन्दा हो जाता है जो ज़िन्दगी की ज़रूरतों में शामिल हैं और अक्सर अन्जाने में या इत्तेफ़ाक़ से हो जाता है जो खुद अपने बस में नहीं होता फिर ये हुक्म दिया जाना कि जैसे ही जिस्म नजिस हो, बस फ़ौरन उसे पाक करो, ये बहुत ही मुश्किल था। ख़ासतौर से अरब के ऐसे मुल्क में जहाँ अक्सर पानी नायाब होता था और बड़ी मुश्किल से मिलता था इसलिए ृरीयत ने अपने हकीमाना तरीक़े से इस पाबन्दी को दूसरे तरीक़े से लागू किया और वह ये कि कुछ ज़िन्दगी की ज़रूरतों और मज़हबी ज़रूरतों के साथ 'पाकीज़गी' की शर्त लगा दी। एक तरफ़ खाने पीने में पाकीज़गी की ज़रूरत, ये ज़िन्दगी की ज़रूरतों में है, दूसरी तरफ़ नमाज़ में पाकी की शर्त ये मज़हबी ज़रूरतों में शामिल है।

अब एक इन्सान का हाथ नजिस है तो वह उस हाथ को नजिस रखे, मगर खाना खाने के लिए उसे हाथ को पाक करना ज़रूरी होगा और जिस्म या कपड़ा नजिस हो तो वह नजिस रहे मगर नमाज़ पढ़ते वक़्त उस जिस्म या कपड़े का पाक करना ज़रूरी होगा। इसी तरह एक मुसलमान एक दिन या एक रात भी हरगिज़ नजिस हालत में बाक़ी नहीं रह सकता और अगर वह शरीयत का पाबन्द है तो उसे उसी बीच में अपने आपको और अपने कपड़े को पाक कर लेना ज़रूरी है।

पाक करने वाली चीज़े

आपको मालूम हो चुका है कि कुछ चीज़ें अपने से नजिस हैं और ये अपने आप में रहते हुए, कभी पाक हो ही नहीं सकतीं, हाँ ये हो सकता है कि इनका आपा मिट जाए तो नजासत भी ख़त्म हो जाएगी। मिसाल के तौर पर एक नजिस दाना अगर पौधे में बदल जाए या शराब सिरके में बदल जाए। तो वह पाक है, मगर इसको पाक होना नहीं कहते।

इसे 'इस्तेहाला' (असलियत का बदल जाना)कहते हैं और 'इस्तेहाला' पाक करने वाली चीज़ें में है। 'इस्तेहाला' यानी किसी चीज़ की असलियत का इस तरह बदल जाना कि नजिस चीज़ बाक़ी ही ना रहे। जैसे - कुत्ता नमक ''के टब'' में गिर कर नमक बन जाए या जल कर राख हो जाए या उससे धुँवा या भाप बने, तो ये नमक या राख, धुँवा और भाप पाक समझा जाएगा, क्योंकि नजिस 'कुत्ता' था और वह अब बाक़ी नहीं रहा। शराब का सिरका बन जाना और इन्सान के खून का मच्छर के पेट मे जाकर उसका खून कहा जाना और काफ़िर का मुसलमान बन जाना। ये सब बातें 'इस्तेहाला' में शामिल की जाएंगी यानि उस चीज़ का बाक़ी ही ना रहना जो नजिस थी। जिस वक़्त कुत्ता 'नमक' बन गया तो अब कुत्ता रहा ही नहीं जो नजिस था अब ये नमक है और नमक को शरीयत ने नजिस नहीं कहा है। इसी तरह शराब सिरका हो गई तो अब शराब नहीं रही अब वह सिरका है जो शरीयत की नज़र में पाक है। नजिस क्या है ? इन्सान का खून लेकिन अब ये मच्छर या खट्मल का ख़ून है, लिहाज़ा पाक है। नजिस कौन है ? जो काफ़िर हो, लेकिन अब ये काफ़िर नहीं मुस्लिम है इसलिए पाक है।

यूँ तो ज़्यादा उलेमा 'इस्तेहाला', इन्क़ेलाब, इन्तेक़ाल (असल जगह का बदलना) और इस्लाम को अलग-अलग मोतह्हरात माना है, मगर गहरी सूझबूझ से इन सब बातों को एक अक़्ली फ़ार्मूला में लाया जाना चाहिए।

अब रह गयीं वह चीज़े कि जिन में वक़्ती तौर पर नजासत पैदा हुई है, उनमें भी एक सूरत ये है कि

वह चीज़ ही पूरी तरह मिट जाए कि आम नज़रों में उसे 'नहीं' होना समझ लिया जाए जैसे नजिस लकड़ी का जल कर राख हो जाना, आम नज़रों में ये वह है जिसमें चीज़ बिल्कुल ख़त्म हो जाती है और ऐसी हालत में उसकी नजासत भी ख़त्म हो जाएगी। दूसरी सूरत ये है कि वह चीज़ बाक़ी रहे और उसके होते हुए नजासत दूर हो जाए। असल में इसी का नाम पाक हो जाना है और जिन चीज़ों से ये बात आ जाये उन्हें पाक करने वाली चीज़ें कहते है। इनमें सबसे अहम पानी, सूखी ज़मीन और धूप है।

पानी

सबसे ज़्यादा आसान टिकाऊ और हर जगह होता है। कुदरत नेचर ने इसे हर जगह पैदा किया है और दुनिया में पानी पाने के बहुत से ज़रिये पैदा किये हैं।

ये हर चीज़ को पाक करता है, लेकिन ये अगर खुद नजिस हो जाए तो उसको पाक करने वाली उसी के अलावा कोई दूसरी चीज़ नहीं हो सकती।

सूखी ज़मीन

इससे सिर्फ़ वह चीज़ें पाक हो सकती हैं, जो आदत से ज़मीन पर इधर उधर फिरा करती हैं, जैसे जूते का तल्ला उनके लिए जो जूते पहन कर चलते हैं और पॉव का तलवा उन लोगों के लिए जो नंगे पॉव चलने के आदी हों, और वह लकड़ी जो किस पैर कटे इन्सान के लिए पॉव की लगी हुई हो और मोटर गाड़ी वग़ैरह के पहिये और इसी तरह की सारी चीज़ें। जब इनमें चलते फिरते नजासत लग जाए तो उसी चलते फिरते की हालत में नजासत छूट जाने के बाद वह पाक हो जाएगी। इस हुक्म में ज़मीन के सोख लेने की ख़ासियत के अलावा इन्सान की सहूलत को भी नज़र में रखा गया है। चलने में हर तरह की ज़मीन पर चलना पड़ता है, इन्सान के लिए बहुत मुश्किल है कि हर समय वह रास्ते में इस बात का ख़्याल रखे कि उसका पैर कब और किस जगह नजिस हो गया। इसके बाद जब भी वह चल कर कहीं पहुँचे तो जूते का तल्ला वग़ैरह पानी से पाक करना ज़रूरी समझे, ये भी मुश्किल काम है। फिर अगर आपका पैर नजिस ही समझा जाए तो जहाँ-जहाँ आप जायें वह ज़मीनें भी नजिस होती जाएँ, लेकिन चूँकि ज़मीन के पाक करने वाली चीज़ है इस वजह से ये सारी मुश्किलें दूर हो जाती हैं।

धूप

इसका भी घेरा सीमित है, इससे वह चीज़ें पाक होती हैं जो आमतौर से एक जगह से दूसरी जगह नहीं ले जायी जातीं, जैसे - ज़मीन, दीवारें, दरवाज़ा, ज़मीन से उगने वाली चीज़ें, खेती, पेड़, पौधे और फल जो पेड़ों पर लगे हैं और इसी तरह की सारी चीज़ें। ये अगर नजिस हो जाएँ और इनमें तरी हो कि जिसे धूप सुखा दे तो वह पाक हो जाएगी। ये भी आम लोगों के फ़ायदे और सहूलत के लेहाज़ से है। अक्सर इस क़िस्म की चीज़ों तक पानी का पहुँचाना कठिन होता है इसलिए आसानी के लेहाज़ से ये क़ानून लागू किया गया है।

इन्सान के जीवन सिस्टम के सुधार और आसानी में इन मुतह्हरात (पाक करने वाली चीज़ों) का बहुत बड़ा दख़ल है। इन के अलावा कुछ चीज़ें और हैं जो बहुत ही सिमटे दाएरे में मुतह्हरात पाक करने वाली चीज़ें ठहराई गयी हैं, जैसे नजासत खाने वाले जानवर को कुछ दिनों तक इस तरह बन्द रखना कि वह सिर्फ़ पाक चीज़ें खाएँ उसके पसीने की पाकीज़गी के लिए। पत्थर और ऐसी ही सख़्त चीज़ जो नजासत को दूर कर दे, इसतिन्जा की ख़ास सूरतों के लिए। 'तबयीयत' (लगाव, साथ) यानि किसी चीज़ का दूसरी चीज़ के साथ पाक हो जाना, जैसे शराब सिरका हो जाए तो वह बरतन जिस में शराब रखी थी पाक हो जाए या काफ़िर मुसलमान हो जाए तो उसका बच्चा उस वक़्त से मुसलमान समझा जाए।

शक की हालतों का हुक्म

पाकी और नजासत के बारे में अगर इन्सान के लिए यक़ीन पा जाने की शर्त लगाई जाती तो बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ता। अगर ग़ौर कीजिए तो ज़िन्दगी की रोज़मर्रा की ज़रूरतों में सैकड़ों चीज़ें इस्तेमाल करना पड़ती हैं जिनके बारे में कुरान उठा कर पाकी का दावा नहीं किया जा सकता, जिन चीज़ों को आप सूखी समझ कर उनके नजिस होने के बारे में सोचते भी नहीं उनमें नजासत का शक पाया जाता है।

आप आटा, दाल, चावल बाज़ार से लेते हैं मगर जब गेहूँ, चना, धान, खेतों से काटा गया तो क्या आप देख रहे थे कि कौन सा हाथ किस हालत में उससे लग रहा था? फिर किन हाथों से वह भिगोया गया, कैसे हाथों से वह पीसा गया, उस वक़्त तक कि जब तक आपके हाथ में आया कितने हाथ उसमें लगे जब आपको ये मालूम नही तो फिर आप उस आटे, दाल वग़ैरह को यक़ीनी तौर पर पाक कैसे समझ सकते हैं। कहने का मतलब ये है कि अगर आप पाकीज़गी के लिए यक़ीन की ज़रूरत समझिये तो ज़िन्दगी से हाथ धो लीजिए। इन सूरतों को सामने रखते हुए शरीयत की तरफ़ से एक क़ानून बनाया गया है और वह ये है कि -

''हर चीज़ को पाक समझो जब तक उसके 'नजिस' का 'यक़ीन' ना हो जाए''। यक़ीन के क्या मानी हैं ? जिसमें किसी शक की गुन्जाइश ना हो। अगर आपके नज़दीक ज़रा सा भी पाकी की सम्भावना या शक हो, तो आप उस से फ़ायदा उठाइए और उसका इस्तेमाल कीजिए। धर्म की तरफ़ से आपके ऊपर कोई ज़िम्मेदारी लागू नहीं होगी।

बेशक दो सूरतें ऐसी हैं जिनमें नजासत के शक होने पर रास्ते का रोड़ा होता है -

पहली सूरत ये है कि किसी चीज़ के बारे में आपको मालूम हो कि ये पहले नजिस थी तो अब उसके पाक होने का यक़ीन ज़रूरी होगा यानि मालूम करना होगा कि वह चीज़ पाक हुई या नहीं। सिर्फ़ ये कि शायद पाक हो गयी हो' इससे काम नहीं चलेगा।

दूसरी ये कि दो-तीन ऐसी चीज़ें जिनमें से हर एक का आपको इस्तेमाल करना पड़ सकता है, और आपको यक़ीन है कि इनमें से कुछ चीज़ें नजिस ज़रूर हैं मगर यक़ीन ना हो कि कौन सी, तो ऐसे में आपको सबसे दूर रहना ज़रूरी होगा।

एहतियात या सावधानी (बचना) और वसवसा

एहतियात बहर हाल अच्छी चीज़ है मगर शर्त ये है कि वसवसे की हद तक ना पहुँच जाए।

एहतियात का बीच का रास्ता ये है कि ऐसी चीज़ जिसमें नजासत की बहुत ज़्यादा उम्मीद हो उससे परहेज़ किया जाए। जैसे - वह हलवाई जिसको आप ने देख लिया कि वह हिन्दू से सारी चीज़ें यानि दूध, घी वग़ैरह ख़रीदा करता है अब उसके यहाँ की चीज़ों से आप परहेज़ कीजिए चाहे ख़ास तौर पर उस चीज़ के नजिस होने का यक़ीन ना हो। यानि ये शक हो कि शायद इस मिठाई में मुसलमान के यहाँ का दूध, घी इस्तेमाल किया गया हो, फिर भी एहतियात ये है कि उससे परहेज़ किया जाए। मगर वसवसे की हद ये है कि आप किसी चीज़ की नजासत के लिए बिलावजह के शक अपने दिमाग़ में पैदा करें। यानि अगर एक शीया मोमिन आपकी दावत करता है मगर आप उसके यहाँ के खाने से सिर्फ़ इसलिए परहेज़ करते हैं कि शायद उसने ग़ैर-मुस्लिम के यहाँ की चीज़ें मंगवाई हों या शायद उसके नौकर ने अन्जाने में ग़ैर-मुस्लिम के यहाँ से ख़रीदारी कर ली हो। आप किसी के घर मिलने के लिए जाते है उसके यहाँ फ़र्श पर बैठने में हिचकिचाते हैं कि शायद ये फ़र्श नजिस हो, कोई मोमिन आदमी आपसे मिलने के आता है आप अपने बैठने का बिछौना समेट लेते हैं कि कहीं उसके कपड़े नजिस न हों। आपसे कोई मुसलमान हाथ मिलाना चाहता है, आप अपना हाथ खींच लेते हैं कि कहीं नजासत मेरे हाथ में न लग जाए। रास्ता बिल्कुल सूखा है कीचड़, तरी का नामनिशान भी नहीं है मगर आपको चिन्ता रहती है कि कहीं छींट न पड़ जाए इसलिए दामन उठाए और कपड़े समेटे हुए रास्ता चलते हैं। पेशाब को पाक करने के लिए एक लोटा काफ़ी नहीं होता और ज़रा सा हाथ पाक करने के लिए सर से पैर तक हौज़ में जाने की ज़रूरत पड़ती है। ये है 'वसवसा' जिसको लोग पाकी समझ कर अपनाते हैं मगर शरीयत में पाकी का जो हुक्म बयान किया गया है उससे इसका कोई लगाव नहीं है।

ये लोग अपनी ज़िन्दगी तबाह करते हैं और दूसरों के लिए भी परेशानी की वजह बनते है। मासूम (अ०) ने इस क़िस्म की 'एहतियात' या पाकी को शैतानी काम का नाम दिया है और इसे छोड़ने के लिए सख़्ती से बयान किया है।

ग़ौर कीजिए अब्दुल्लाह बिन सेनान की रवायत। कहते हैं कि मैंने इमाम जाफ़र सादिक़ (अ०) से एक शख़्स का बयान किया जो समझदार होते हुए वज़ू किया

करता है और नमाज़ पढ़ता रहता है यानि वसवसे की वजह से घण्टों में वज़ु और नमाज़ पूरी करता है, हज़रत (अ०) ने फ़रमाया - " कैसा समझदार है वह कि शैतान के कहने पर चलता है।"

अब्दुल्लाह बिन सेनान को ताजुब हुआ, कहा "ये कैसे? "आप (अ०) ने फ़रमाया कि उससे खुद पूछ ले कि वह जो कुछ करता है किसके हाथों हैं, वह कहेगा कि शैतान के हाथ से परेशान हूँ।

सच्चाई ये है कि ये वसवसा रखने वाले अक्सर खुद अपने हाथों परेशान भी होते हैं। लेकिन फिर भी वह अपने रवैये को बदल नहीं पाते। ताजुब न कीजिए कि अक्सर पढ़े-लिखे लोग इस तरह के वसवसे का शिकार कैसे हो जाते है, क्योंकि ये तो एक मान्सिक असन्तुलन है, और ज़ाहिर है कि बीमारी जाहिल और जानकार को नहीं देखती। फिर शैतान की पालीसी भी ये है कि वह हर इन्सान को उसी रास्ते से बहकाता है जिधर उसके मन का मिलान ज़्यादा होता है। शरीयत का एक पाबन्द इन्सान दूसरे गुनाहों को अन्जाम नहीं देता तो वह वसवसे में गिरफ़्तार होके कई अच्छे कामों को अन्जाम नहीं दे पाता। मुबारक हैं वह लोग जिन्हें अपनी इस कमज़ोरी का एहसास है, और वसवसे में गिरफ़्तार लोग उनके लिए ज़रूरी है कि वह जल्दी ही अपने जी पर ज़बरदस्ती करके अपने आपको रोकें और, अपने ख़्याल में खुद कुछ दिन 'नजासत' से बेपरवाह हो जाएँ तो उम्मीद है कि धीरे-धीरे सीधे रास्ते पर आ जाएँ। (ख़ुदा सब को बीच रास्ते पर बाक़ी रहने की तौफ़ीक़ दे)।

शरीयत वाली पाकी (यानि वुज़ु, गुस्ल और तयम्मुम)

जिस्म और कपड़े को सारी नजासतों से पाक करने के बाद नमाज़ के लिए एक ख़ास तरह की पाकी की ज़रूरत है जो शरीयत के बताए हुए तरीक़े से पैदा होती है उसका ज़रिया वुज़ु और गुस्ल है और इन दोनों के न हो सकने की हालत में 'तयम्मुम' जो इनका बदल है। ये नमाज़ के अदा करने के लिए शरीयत की तरफ़ से वाजिब हैं। लेकिन शरीयत में 'वाजिब' की दो क़िस्में हैं :-

1. तवस्सुली वाजिब (जिसमें नीयत की शर्त नहीं होती) इसके मानी ये हैं कि सिर्फ़ किसी चीज़ का हो जाना वह चाहे किसी तरह भी हो, जैसे आपका कोई कपड़ा नजिस हो उसे पाक करना ज़रूरी है मगर ये ज़रूरी नहीं कि आप नीयत और इरादे के साथ ही ऐसा करें बल्कि अगर आप बिना इरादे और नीयत के उसे हौज़ में डाल दें या आपके अलावा कोई दूसरा आदमी उसे पाक कर दे या हवा का ऐसा झोंका आए जो उसे हौज़ में ले जाकर डाल दे, तब भी वह पाक हो जाएगा।

2. ताअब्बुदी वाजिब - इसके मानी ये हैं कि सिर्फ़ किसी चीज़ का हो जाना काफ़ी नहीं है, बल्कि इन्सान का एक ख़ास इरादे और नीयत के साथ काम करना है, ये वह चीज़ें हैं जिनमें नीयत की ज़रूरत होती है। वज़ु, गुस्ल (नहान) और तयम्मुम इसी तरह की चीज़ें हैं और वह बग़ैर नीयत के सही नहीं हो सकते।

नीयत का फ़लसफ़ा

अगर इस्लाम का मक़सद सिर्फ़ बाहरी संसार का बनाना सँवारना और सिर्फ़ माद्दी (Material) फ़ायदा पहुँचाना होता तो सिर्फ़ हाथ-पैर से यानि बिना नीयत के सिर्फ़ जिस्म से काम काफ़ी होता। नमाज़ का मक़सद अगर सिर्फ़ 'कसरत' करना होता तो वह उठा-बैठी से पूरा हो जाता, और उसके अलावा किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं थी। रोज़े का मक़सद अगर सिर्फ़ मेदे, जिगर को सही करना होता तो वह सिर्फ़ फ़ाक़े से हो जाता है उसके साथ कोई मक़सद न होता और अगर वज़ु का मक़सद सिर्फ़ हाथ-मुँह का साफ़ करना होता तो सिर्फ़ पानी तरेड़ियों से (हाथ-मुँह धो लेना) काफ़ी होता, चाहे किसी तरह से भी हो। और तयम्मुम का मक़सद अगर जरासीम (Germs) का मिटाना होता, जिसके लिए मिट्टी ज़हर का काम करती है तो बस मिट्टी का मल लेना ही काफ़ी होता। मगर इस्लाम का मक़सद तो इन्सान की बाहरी दुनिया के साथ-साथ उसकी अन्दर की दुनिया को बनाना और उसकी आत्मा को सँवारना है उसकी रूहानियत को बढ़ाना है। और उसके दिलो-दिमाग़ पर वह असर डालना है जिससे उसके तक़्वा (संयम) और परहेज़गारी बढ सके और उसे मन की चाहतों से आज़ादी मिल सके। वही रूहानियत का बढ़ना ख़ुदा की बारगाह में 'कुरबत' (पास होना) है जिसे "*कुर-बतन*

इलल्लाह'' के शब्दों से बताया जाता है। इसके लिए सिर्फ़ जिस्म के हाथ-पैर का हिलाना काफ़ी नहीं है, बल्कि उसके साथ किसी और चीज़ की ज़रूरत है।

इन्सान की समझ का और जो कुछ वह महसूस करता है उसका असर उसके हालात पर बहुत पड़ता है। ख़ासतौर से वह असर जिसका तालुक़ दिमाग़ से है वह तो सोच-समझ ही से जुड़ा है। ग़ौर कीजिए शाम के वक़्त इन्सान ठन्डी सड़क पर तफ़रीह (मनोरंजन) के लिए जाता है मगर उसे तफ़रीह तभी महसूस होती है जब वह इस ख़्याल से जाए कि वह तफ़रीह के लिए ही जा रहा है। लेकिन अगर अपने किसी काम से वह रोज़ उस ठन्डी सड़क पर जाता हो और उसी रास्ते से वापस आता हो तो हो सकता है कि ठण्डी हवा से और पैदल चलने से उसकी सेहत (Health) पर अच्छा असर पड़े लेकिन जिस चीज़ का नाम 'तफ़रीह' है वह नहीं होगी। बस यही राज़ है जो 'नीयत' में छिपा है।

नमाज़ का ये मक़सद कि उठने-बैठने से कसरत हो जाए, यक़ीनन पूरा हो सकता है मगर ये कि " नमाज़ शर्म वाली और बुरी बातों से रोकती है" ये उससे नहीं मिल सकता। रोज़े का ये फ़ायदा कि मेदा सही हो जाए तो वह सिर्फ़ फ़ाक़ा करने से भी हो सकता है। मगर वह जिसे *''लाअल्लकुम तत्कून''* (कि तुम परहेज़गार संयमी बन सको) के शब्दों से रोज़े का मक़सद बताया गया है वह तो इससे पूरा नहीं होता। बल्कि हो सकता है कि इन्सान कसरत के ज़रिए जिस्मानी ताक़त पा कर और फ़ाक़े से अपने मेदे और अपनी सेहत को अच्छी बनाने के बाद ऐसे गुनाहों को अन्जाम देने लगे जिन्हें उससे पहले अन्जाम नहीं देता था, इस सूरत में तो नमाज़ और रोज़ा गुनाहों के बढ़ जाने की वजह बन सकते हैं, बुराईयों से रोकने और तक़वा (परहेज़गारी) पैदा करने की वजह कहाँ होंगे। ये फ़ायदा उसी नीयत से होगा यानी जब मन के साथ काम होगा यानि वह 'सोच' और 'एहसास' जिसका तालुक़ दिमाग़ से है। अगर वह हालात रोज़ाना पाँच वक़्त पर सही तरीक़े से पैदा हो जाए तो यक़ीन है इन्सान के दिमाग़ में एहसास और असर मज़बूती से बैठ जाएगा जो उसे बुराइयों से रोक सकता है। इसी तरह रोज़े का भी मसला है।

बात यह है कि जब इन्सान कोई काम करता है तो वह काम उसके जिस्म के कुछ हिस्से (अंग) करते हैं, लेकिन आत्मा का तालुक़ पूरे जिस्म के साथ बराबर से है, अब अगर कोई चीज़ ऐसी हो जो नफ़्स पर सीधा असर डालती हो तो फिर उसका असर इन्सान के पूरे जिस्म पर बराबर से पड़ेगा। इस तरह हो सकता है कि कुरान की कोई छोटी सी आयत ज़बान पर जारी हो, देखने में तो ये एक ऐसा काम है जो बहुत ही थोड़े वक़्त में हो गया, और जिस्म के एक छोटे से हिस्से ने यानि 'ज़बान' ने उसे किया। लेकिन अगर उसी एक आयत से इन्सान के दिल-दिमाग़ पर असर पड़ जाए तो वही एक आयत इन्सान की रूह और जिस्म दोनों की सही तरबियत के लिए काफ़ी हो सकती है, बस 'नीयत' के ज़रिए अ़मल में यही बात पैदा हो जाती है।

नीयत की असल सच्चाई

नीयत क्या है ? ये एहसास और समझ कि हम क्या कर रहे हैं ? और किसके लिए कर रहे हैं ? पहले हिस्से में वह सब बातें शामिल हैं जो इस बात को तय करती हैं कि हम कौन सा काम कर रहे हैं यानी ये समझना कि हम नमाज़ यानी ज़ुहर की नमाज़ अगर इसके पहले की भी कोई नमाज़ है तो वह अदा की है या क़ज़ा है ? दूसरा हिस्सा वह है जिसकी तरफ़ *''क़ुर्बतन इलल्लाह''* से इशारा होता है ।

कुछ लोग समझते हैं कि नीयत भी नमाज़ के ज़िक्र (यानी नामज़ में जो कुछ ज़बान से पढ़ा जाता है) की तरह कुछ शब्द हैं जो ज़बान पर लाये जाते हैं, वह नमाज़ पढ़ने में ज़बान से ये शब्दों या बोल का दुहराना ज़रूरी समझते हैं कि '' नमाज़ पढ़ता हूँ, ज़ोहर की चार रकत वाजिब '' *क़ुर्-बतन इ-लल्लाह* ''। कुछ लोग समझते हैं कि इसमें देर तक कुछ सोंचने की ज़रूरत है, इसलिए उनकी नीयत बड़ी देर में होती है मगर सच्चाई ये है कि नीयत तो 'इरादे' या मन बनाने का नाम है और इरादा खुद किसी 'मनचाहे काम' को कराता है। जैसे एक इन्सान कोठे पर से गिर पड़ता है और एक अपने पैरों से कोठे पर से नीचे उतरता है। यहाँ पहले आदमी का काम उसके इरादे और अख़्तियार अपनी चाह से नहीं हुआ मगर दूसरे का काम उसके इरादे और

चाह से हुआ क्योंकि वह अपने इरादे और अख़्तियार से नीचे उतरा है। इसी तरह वजू और नमाज़ वग़ैरह, ये न हो कि जैसे सोते में कोई नमाज़ पढ़े, या नशे की हालत में हो, या जा रहा हो मुँह धोने मगर भूल से कुहनियों तक हाथ धो ले जैसे वजू में धोते हैं । यहां ये काम बिना नियत और इरादे काम हुआ है, लेकिन अगर वजू करना चाहता है और वजू कर रहा है तो बस यही नीयत है । अब उस पर ज़्यादा सोचने की क्या ज़रूरत है । जब नमाज़ का वक़्त आया तो आप घर से नमाज़ के लिये निकले, अगर उस वक़्त नमाज़ का ख़याल न होता तो उस वक़्त के पहले ही निकल पड़ते फिर उसी रास्ते पर आए जिससे मस्जिद तक पहुँचते हैं । अगर नमाज़ का ध्यान ना होता तो किसी दूसरे रास्ते पर क्यों नहीं चले गऐ । फिर मस्जिद में आए और जमाअत की सफ़ (लाइन) में आकर बैठे, एक़ामत कहने वाले की '*क़द क़ामतिस्ससलाह*'' की आवाज़ पर खड़े हुए । ये सब कुछ क्या बिना नमाज़ के ख़्याल के हो रहा है ? फिर जब इमाम ने तकबीरतुल एहराम (अल्लाहो अकबर) कह दी तो उसके बाद नमाज़ के शुरू कर देने में आप डरते हैं कि कहीं बिना नीयत न हो, इसके लिये ज़्यादा देर तक हाथों को कानों तक लेजा- लेजा कर पलटाने की क्या ज़रूरत है, बस '*अल्लाहु अकबर*' कह दीजिए। अगर आप सोए हुए नहीं हैं, जाग रहे हैं और होश में भी हैं तो वह *अल्लाहु अक्बर*' नीयत और इरादे ही के साथ होगा और इससे ज़्यादा नियत के लिए किसी और चीज़ ज़रूरी नहीं है।

ये इरादा और नीयत मन यानी दिमाग़ के अन्दर छिपी हुई एक ख़ासियत गुण है जिसकी तरफ़ अक्सर इन्सान का ध्यान नहीं जाता । आप ग़ौर करेंगे कि कभी कभी जब आप नमाज़ के लिए खड़े होते हैं, और चाहते हैं कि ज़ोहर की नमाज़ पढ़ूँ तो दिल में ये ख़्याल आता है कि अस्र की नमाज़ पढ़ता हूँ फिर आप खुद ही अपने आपको टोकते हैं कि नहीं 'अस्र' नहीं ज़ोहर । मालूम होता है कि मन की गहराईयों में कहीं ये बात छिपी है कि आप ज़ोहर की नमाज़ पढ़ रहे हैं वरना खुद ही अपने ख़्याल की ग़लती का एहसास कैसे होता और आप अस्र का ख़्याल करके फिर ज़ोहर की तरफ़ क्यों पलटते । बेशक नियत का वह दूसरा हिस्सा कि " किस के लिए ये नमाज़ है " । इसको सही-सही समझना बहुत मुश्किल चीज़ है। वह मर्तबा (दरजा) मारेफ़त (ख़ुदा की पहचान) से जुड़ा है और हर इन्सान उतना ही अ़मल करता है जितनी उसे मारेफ़त (ख़ुदा की पहचान) होती है। क्योंकि नियत के लिए ठहरने, सोचने से उसमें कोई चीज़ बढ़ नहीं जाती, इसलिए शरीयत में नीयत का सबसे निचला दरजा जो ज़रूरी बताया गया है वह सिर्फ़ उसका ख़्याल कर लेना और उसके साथ किसी दूसरे मक़सद का निगाहों में ना होना, यह वह चीज़ है जिस से अ़मल रस्मी-तौर पर सही हो जाएगा । मगर क़बूल होने की बात इसके आगे है और (खुदा के आगे) गिड़गिड़ाने का स्टेज दूसरा है। दरअ़सल ये वही मगन और ध्यान की ऊँचाई है जिससे नमाज़ में खुलूस खरापन और पैदा होता है। यूँ तो ज़ाहिरी तौर पर जो संस्कार, तरीक़ा बताया गया है उसके लेहाज़ से मैं दस बार इस तरह नमाज़ पढ़ सकता हूँ, जिसमें निगाह सजदेगाह से न हटे, जिस्म का कोई हिस्सा इधर-उधर न हिले, मगर खुलूस का ताल्लुक़ तो बिल्कुल दिल से है जिससे अंग अंग पर का चैन में शान्ति में डूबना ज़रूर है। इसी को इमाम (अ०) ने इरशाद फ़रमाया कि *" लौ ख़-श-अ-क़ल-बहु क़ल्बहू ल-ख़श-अ साइरि जवारिह "* अगर वह दिल में गिड़गिड़ाता तो जिस्म के तमाम हिस्सों पर भी यह गिड़गिड़ाना छा जाता। इसी ध्यान के भरपूर होने का वह दरजा है कि नमाज़ में अल्लाह के अलावा किसी और तरफ़ ध्यान ही न हो, यहां तक कि पैर से तीर खींच लिया जाए। यह बात, मारेफ़त (खुदा की पहचान/ज्ञान की कला डिग्री) से जुड़ी है और इसी लिए वह शरीयत के सामने वाले हुक्मों और रस्मी क़ानून की हदों से ऊपर की मन्ज़िल, स्टेज है :-

" ईन ज़मीन रा आसमाने दीगर अस्त "

(इस धरती का आस्मान दूसरा है।)

अल आमालु बिन्नीयात (काम नीयत से होते हैं)

इबादत (भक्ति) का दारोमदार नीयत पर है। इसी नीयत के ज़रिए से काम में कमाल पैदा होता है । हो सकता है देखने में कोई काम छोटा हो और बहुत कम समय में पूरा हो जाए, लेकिन अगर नीयत सही है

और पूरे खरेपन से वह काम किया गया हो तो वह किसी बड़े काम के बराबर होगा। इसके मानी यही हैं कि *"अ़ल अ़ामालु बिन्नीयात"* काम बस नीयतों से जुड़े हैं " बल्कि कभी-2 तो अ़मल होता ही नहीं और यही नीयत है जो भलाई और नजात (मोक्ष) की वजह बन जाती है, मान लीजिए कि एक आदमी है जिसने सच्चे दिल से इस्लाम को कुबूल किया, मगर पहली नमाज़ का वक़्त आने से पहले ही इस दुनिया से गुज़र गया, अब उसने ज़ाहिर में तो कोई काम पूरा नहीं किया, मगर ये जन्नत का हक़दार है। आख़िर बग़ैर नमाज़ पढ़े, ज़कात दिए, हज व जिहाद किये हुए कैसे नमाज़ रोज़े करने वालों की जन्नत में पहुँच गया । वह वही उसकी 'नीयत' है जो उसको जन्नत में जगह दे रही है । इसी वजह से इमाम (अ०) ने फ़रमाया है - " *नी-यतुल मोमिनीन ख़ैरुन मिन अ़मलिही व नी-यतुल काफ़िरू शर्रुन मिन अ-मलिही"*

"मोमिन की नीयत उसके काम से बेहतर है और काफ़िर की नीयत उसके काम से बुरी है ।"

बात ये है कि काम एक हदों में घिरा होता है और माध्यम, व कारणों से बन्धा होता है। हो सकता है कि किसी के पास पैसा ना हो, तो वह ज़कात नहीं दे सकता, बीमार रहता हो इस वजह से रोज़ा नहीं रख सकता, इस्तेताअ़त (मक्का आने-जाने का ख़र्च नहीं रखता) नहीं है इसलिए हज को नहीं जा सकता, अब अगर ज़रिये मौजूद हो तब भी वह इन कामों को एक हद के अन्दर ही अन्जाम दे सकेगा, लेकिन नीयत की कोई हद (सीमा) नहीं है, इसके लिए माध्यम और ज़रिये होने की ज़रूरत नहीं है । अगर एक बिल्कुल बेबस और ग़रीब इन्सान में जोश और वलवला मौजूद है लेकिन ज़रिया ना होने की वजह से वह मजबूर है तो जिस हद तक उसकी चाह ज्यादा होगी उसी हद तक वह सवाब का मुस्तहक़ होगा । अब इसमें क्या शक है कि उसकी नीयत उसके काम से कई गुना बेहतर है, लेकिन बुरे मन वाला काफ़िर नास्तिक इन्सान, हो सकता है उसके पास बुराई और शरारत के ज़रिये कम हों मगर उसके ख़राब हौसले और खोट के इरादे जुल्म अन्याय की आख़िरी हदों तक पहुँच सकते हैं, इसी को समझ कर शायर ने अच्छा कहा है -

"यक हुसैने नीस्त कू गरदद शहीद
वरना बिसयारन्द दर आ़लम यज़ीद"

तर्जुमाः-

(एक हुसैन नहीं हैं जिन्हें शहीद किया गया है वरना दुनया में बहुत से यज़ीद हैं।

इनको इन लफ़्ज़ों में कहा है कि *"नी-यतुल काफ़िरू शर्रुन मिन अ़-म-लिही"* "काफ़िर की 'नीयत' उसके सामने वाले कामों से ज़्यादा खोटी और बुरी होती है"।

जारी...........................।

